Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2025, E-Journal, Vol. I, Issue L (50), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

चिकित्सा प्रणाली के विकास में भारतीय ज्ञान परम्परा का योगदान

डॉ. मधुसूदन चौबे*

*** एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास) प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बडवानी (म.प्र.) भारत**

शोध सारांश – भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की प्राचीनतम एवं सर्वाधिक समृद्ध ज्ञान परम्पराओं में से एक है, जिसने दर्शन, गणित, ज्योतिष, कृषि, वास्तु, शिक्षा तथा चिकित्सा जैसे अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भारत की आयुर्वेद परम्परा मानव जीवन को केवल रोगमुक्त करने तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने स्वस्थ जीवन, दीर्घायु तथा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक संतुलन पर आधारित समग्र स्वास्थ्य (Holistic Sealth) की अवधारणा प्रस्तुत की। वैदिक साहित्य, विशेषकर अथर्ववेद में औषधीय वनस्पतियों, रोगों एवं उपचार विधियों का प्रारम्भिक स्वरूप मिलता है, जबकि चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा अष्टाङ्गहृदयम् जैसे ग्रंथों ने चिकित्सा विज्ञान को व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य चिकित्सा प्रणाली के विकास में भारतीय ज्ञान परम्परा के योगदान का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन में वैदिक साहित्य, आयुर्वेदिक संहिताओं, आधुनिक शोधों तथा सरकारी दस्तावेजों का उपयोग करते हुए भारतीय चिकित्सा प्रणाली की विकास यात्रा का विवेचन किया गया है। शोध से स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद केवल उपचार प्रणाली नहीं, बल्कि निवारक चिकित्सा, पोषण, पर्यावरण संरक्षण, मानसिक स्वास्थ्य तथा जीवनशैली प्रबंधन पर आधारित एक समग्र स्वास्थ्य विज्ञान है। सुश्रुत द्वारा विकसित शल्य चिकित्सा, चरक की निदान एवं चिकित्सा पद्धति, वाग्भट्ट द्वारा अष्टांग आयुर्वेद का समन्वित प्रतिपादन तथा योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा की अवधारणाएँ आज भी वैश्विक चिकित्सा जगत के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

वर्तमान समय में जीवनशैली जनित रोगों, मानसिक तनाव, प्रतिरक्षा क्षमता में कमी तथा पर्यावरणीय असंतुलन जैसी चुनौतियों के बीच भारतीय ज्ञान परम्परा की चिकित्सा अवधारणाएँ पुन: वैश्विक स्तर पर स्वीकार्यता प्राप्त कर रही हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा पारंपरिक चिकित्सा को बढ़ावा देना तथा भारत में आयुष मंत्रालय की विभिन्न पहलें इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। अत: भारतीय ज्ञान परम्परा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि भविष्य की स्वास्थ्य व्यवस्था के निर्माण का एक सशक्त आधार भी है।

शब्द कुंजी – भारतीय ज्ञान परम्परा, आयुर्वेद, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, योग, आयुष, पारंपरिक चिकित्सा, समग्र स्वास्थ्य।

प्रस्तावना – 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्, आतुरस्य विकार प्रशमनम्' आयुर्वेद का यह मूल सिद्धांत भारतीय चिकित्सा दर्शन की आधारशिला है। इसका तात्पर्य है कि चिकित्सा का उद्देश्य केवल रोगों का उपचार करना नहीं, बल्कि स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना भी है। यही दृष्टिकोण भारतीय चिकित्सा प्रणाली को विश्व की अनेक चिकित्सा पद्धतियों से भिन्न बनाता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा का विकास हजारों वर्षों की सतत बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक साधना का परिणाम है। इस परम्परा में चिकित्सा को केवल जैविक प्रक्रिया नहीं माना गया, बल्कि शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा तथा प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करने का माध्यम समझा गया। इसी कारण भारतीय चिकित्सा पद्धति में आहार, विहार, योग, ध्यान, दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा नैतिक जीवन को स्वास्थ्य का अभिन्न अंग माना गया है।

वैदिक साहित्य में विशेषत: अथर्ववेद में अनेक रोगों, औषधीय पौधों तथा उपचार पद्धतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके पश्चात आयुर्वेद का व्यवस्थित स्वरूप चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा वाग्भट्ट के ग्रंथों में विकसित हुआ। चरक ने कायचिकित्सा, रोग निदान, औषध विज्ञान एवं चिकित्सा सिद्धांतों का विस्तृत प्रतिपादन किया, जबकि सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा, शरीर रचना विज्ञान तथा शल्य उपकरणों का वैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया। वाग्भट्ट ने आयुर्वेद के विभिन्न अंगों का समन्वय कर चिकित्सा विज्ञान को अधिक व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया।

प्राचीन भारतीय चिकित्सकों ने मानव शरीर का सूक्ष्म अध्ययन कर रोगों के कारण, उनके निदान तथा उपचार के सिद्धांत विकसित किए। उन्होंने औषधीय वनस्पतियों, खनिज पदार्थों तथा पशु-आधारित औषधियों का वर्गीकरण किया तथा व्यक्तिगत प्रकृति (प्रकृति परीक्षण) के आधार पर चिकित्सा की अवधारणा विकसित की, जिसे आज के संदर्भ में व्यक्तिगत चिकित्सा के प्रारंभिक रूप के रूप में देखा जा सकता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के विकास के साथ एलोपैथिक प्रणाली ने व्यापक विस्तार प्राप्त किया, किंतु बढ़ती जीवनशैली जनित बीमारियाँ, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा, मानसिक तनाव, अवसाद तथा प्रतिरक्षा संबंधी समस्याओं ने पुन: समग्र चिकित्सा पद्धतियों की आवश्यकता को रेखांकित किया है। इसी कारण विश्व स्तर पर आयुर्वेद, योग, ध्यान, प्राकृतिक चिकित्सा तथा औषधीय पौधों पर आधारित उपचार प्रणालियों के प्रति रुचि में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

भारत सरकार द्वारा आयुष मंत्रालय की स्थापना, राष्ट्रीय आयुष

मिशन, औषधीय पौधों के संरक्षण, योग के वैश्विक प्रचार तथा पारंपरिक चिकित्सा के वैज्ञानिक प्रमाणीकरण हेतु किए जा रहे प्रयास इस बात के प्रमाण हैं कि भारतीय चिकित्सा ज्ञान केवल सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि भविष्य की स्वास्थ्य व्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार बन सकता है।

ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परम्परा के चिकित्सा संबंधी योगदान का ऐतिहासिक, वैज्ञानिक तथा समकालीन दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी आवश्यकता की पूर्ति का प्रयास है।

शोध समस्या – यद्यपि भारतीय चिकित्सा प्रणाली विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध परम्पराओं में से एक है, तथापि औपनिवेशिक काल, आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा के तीव्र विस्तार तथा पारंपरिक ज्ञान के सीमित वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण के कारण इसके अनेक आयाम अपेक्षित रूप से मुख्यधारा के अकादमिक विमर्श में स्थान नहीं पा सके। वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर पारंपरिक चिकित्सा के प्रति बढ़ती रुचि ने भारतीय चिकित्सा ज्ञान की ऐतिहासिक भूमिका एवं वैज्ञानिक आधार के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। अत: यह अध्ययन इस प्रश्न का उत्तार खोजने का प्रयास करता है कि चिकित्सा प्रणाली के विकास में भारतीय ज्ञान परम्परा का वास्तविक योगदान क्या रहा है तथा वर्तमान स्वास्थ्य व्यवस्था में उसकी प्रासंगिकता किस प्रकार स्थापित होती है।

शोध के उद्देश्य :

1. भारतीय ज्ञान परम्परा में चिकित्सा विज्ञान के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना।
2. वैदिक साहित्य एवं आयुर्वेदिक संहिताओं में निहित चिकित्सा संबंधी ज्ञान का विश्लेषण करना।
3. चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट्ट के चिकित्सा विज्ञान में योगदान का मूल्यांकन करना।
4. योग, औषधीय वनस्पतियों एवं जीवनशैली आधारित चिकित्सा की उपयोगिता का अध्ययन करना।
5. आधुनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में भारतीय चिकित्सा प्रणाली की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।
6. चिकित्सा क्षेत्र में भारतीय ज्ञान परम्परा के वैश्विक प्रभाव का परीक्षण करना।

शोध प्रश्न :

1. भारतीय ज्ञान परम्परा में चिकित्सा विज्ञान का विकास किन प्रमुख चरणों से होकर हुआ?
2. आयुर्वेद के मूल सिद्धांत आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के संदर्भ में कितने प्रासंगिक हैं?
3. चरक एवं सुश्रुत के योगदान ने चिकित्सा विज्ञान को किस प्रकार प्रभावित किया?
4. वर्तमान स्वास्थ्य चुनौतियों के समाधान में भारतीय चिकित्सा प्रणाली की क्या भूमिका हो सकती है?
5. वैश्विक स्तर पर भारतीय चिकित्सा ज्ञान की स्वीकृति के प्रमुख कारण क्या हैं?

शोध पद्धति – यह शोध गुणात्मक एवं ऐतिहासिक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए मुख्यत: द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में अथर्ववेद, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टाङ्गहृदयम् तथा अन्य आयुर्वेदिक ग्रंथों का अध्ययन किया जाएगा। द्वितीयक स्रोतों में शोध-पत्र, पुस्तकें, सरकारी प्रकाशन, आयुष मंत्रालय के दस्तावेज तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रकाशित सामग्री का विश्लेषणकिया जाएगा। उपलब्ध तथ्यों का ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से परीक्षण कर निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाएंगे।

भारतीय ज्ञान परम्परा की अवधारणा – भारतीय ज्ञान परम्परा से अभिप्राय उस समग्र ज्ञान-संपदा से है, जिसका विकास भारत में सहस्राब्दियों के बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर हुआ। यह परम्परा केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें गणित, खगोलशास्त्र, धातुकर्म, कृषि, पर्यावरण, शिक्षा, वास्तुकला तथा चिकित्सा विज्ञान जैसे अनेक विषयों का वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित ज्ञान निहित है।

भारतीय ज्ञान परम्परा का प्रमुख आधार लोककल्याण है। यहाँ ज्ञान का उद्देश्य केवल सैद्धान्तिक जानकारी प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करना है। इसी कारण भारतीय चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य को केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं माना गया, बल्कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक संतुलन की अवस्था के रूप में परिभाषित किया गया।

आयुर्वेद में स्वास्थ्य की सर्वाधिक प्रसिद्ध परिभाषा सुश्रुत संहिता में प्राप्त होती है-

'समदोष: समाग्निश्च समधातु मलक्रिय:।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमन: स्वस्थ इत्यभिधीयते।।'

अर्थात् जिस व्यक्ति के दोष (वात, पित्त एवं कफ), अग्नि, धातुएँ तथा मल-क्रियाएँ संतुलित हों तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ एवं मन प्रसन्न हों, वही वास्तव में स्वस्थ है। यह परिभाषा आधुनिक विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा प्रतिपादित समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा से आश्चर्यजनक साम्यता रखती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में स्वास्थ्य का संबंध धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकृइन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति से भी जोड़ा गया है। चरक संहिता में कहा गया है कि स्वस्थ शरीर ही जीवन के समस्त उद्देश्यों की प्राप्ति का आधार है। अत: चिकित्सा केवल रोगोपचार का विज्ञान नहीं, बल्कि जीवन-प्रबंधन का विज्ञान भी है।

भारतीय चिकित्सा दर्शन पाँच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), त्रिदोष सिद्धांत, सप्तधातु, त्रिमल, अग्नि तथा ओज जैसी अवधारणाओं पर आधारित है। आधुनिक जैव-चिकित्सा इन अवधारणाओं की शब्दावली का उपयोग नहीं करती, किंतु शरीर में संतुलन, चयापचय , प्रतिरक्षा और शरीर की कार्यात्मक प्रणालियों के संतुलन जैसे विचार इनके साथ तुलनात्मक अध्ययन का विषय अवश्य हैं। इसलिए दोनों परम्पराओं के बीच समानता स्थापित करते समय सावधानी अपेक्षित हैय उन्हें पूर्णत: समान मानना उचित नहीं होगा।

वैदिक काल में चिकित्सा विज्ञान का विकास– भारतीय चिकित्सा प्रणाली की जड़ें वैदिक काल तक पहुँचती हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में स्वास्थ्य, रोग, औषधियों तथा उपचार संबंधी अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें अथर्ववेद को विशेष रूप से चिकित्सा ज्ञान का प्रमुख स्रोत माना जाता है।

वैदिक समाज में स्वास्थ्य का संबंध केवल शरीर से नहीं, बल्कि प्रकृति, ऋतु, आहार, जल, वायु तथा मानसिक संतुलन से भी था। ऋषियों ने अनुभव किया कि असंतुलित जीवनशैली रोगों का कारण बनती है, जबकि संतुलित

दिनचर्या, शुद्ध भोजन, संयम तथा स्वच्छता स्वास्थ्य के संरक्षण में सहायक हैं।

ऋग्वेद में अश्विनीकुमारों का वर्णन देववैद्यों के रूप में किया गया है। वे रोगियों का उपचार करने, दृष्टिहीनों को दृष्टि प्रदान करने तथा विभिन्न शारीरिक विकारों को दूर करने वाले चिकित्सकों के प्रतीक माने गए हैं। यद्यपि इन वर्णनों का धार्मिक एवं प्रतीकात्मक पक्ष भी है, फिर भी वे उस समय चिकित्सा के महत्व को स्पष्ट करते हैं।

वैदिक साहित्य में वनस्पतियों को दिव्य औषधि माना गया है। औषधियों के संग्रह, संरक्षण तथा उपयोग के संबंध में अनेक मंत्र मिलते हैं, जो यह संकेत देते हैं कि उस समय औषधीय पौधों का पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध था।

स्वच्छ जल, शुद्ध वायु, सूर्यप्रकाश तथा यज्ञीय वातावरण को स्वास्थ्यवर्धक माना गया। आधुनिक सार्वजनिक स्वास्थ्य के संदर्भ में देखें तो स्वच्छता, पर्यावरणीय संतुलन तथा निवारक उपायों पर दिया गया यह बल अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अथर्ववेद और चिकित्सा विज्ञान– अथर्ववेद भारतीय चिकित्सा ज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण वैदिक स्रोत है। इसमें रोगों, औषधीय वनस्पतियों, विषोपचार, ज्वर, त्वचा रोग, कृमि, घाव तथा मानसिक विकारों तक के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

अथर्ववेद में औषधियों को पृथ्वी की संतान कहा गया है तथा उनके औषधीय गुणों का अत्यंत सम्मानपूर्वक वर्णन किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि औषधीय पौधों का व्यवस्थित ज्ञान उस समय समाज में विद्यमान था। अनेक विद्वानों का मत है कि बाद में विकसित आयुर्वेद ने इन्हीं वैदिक अनुभवों को व्यवस्थित वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया।

अथर्ववेद में रोगों के उपचार के लिए तीन प्रमुख आधार दिखाई देते हैं–

1. औषधीय वनस्पतियों का प्रयोग।
2. आहार एवं जीवनशैली का महत्व।
3. आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक उपाय।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वैदिक चिकित्सा में मंत्रों का भी प्रयोग मिलता है। आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि इन मंत्रों की भूमिका केवल धार्मिक न होकर रोगी के मानसिक साहस, आशा तथा सकारात्मक मनोवृत्ति को सुदृढ़ करने में भी रही होगी। इस दृष्टि से यह चिकित्सा के मनोवैज्ञानिक आयाम का प्रारम्भिक स्वरूप माना जा सकता है।

अथर्ववेद में विषैले जीवों के दंश, ज्वर, अस्थिभंग तथा घावों के उपचार संबंधी संकेत भी प्राप्त होते हैं। यद्यपि इनका आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षण अलग विषय है, तथापि यह निर्विवाद है कि वैदिक समाज में चिकित्सा संबंधी व्यवस्थित अनुभव-संपदा उपलब्ध थी।

आयुर्वेद का उद्भव एवं विकास– 'आयुर्वेद' शब्द दो शब्दों–'आयु:' (जीवन) और 'वेद' (ज्ञान)कृसे मिलकर बना है। अर्थात् आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है। इसका उद्देश्य केवल रोग का उपचार नहीं, बल्कि स्वस्थ जीवन की रक्षा, रोगों की रोकथाम तथा दीर्घायु की प्राप्ति है।

भारतीय परम्परा के अनुसार आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र तथा तत्पश्चात् महर्षि भरद्वाज के माध्यम से मानव समाज तक पहुँचा। यह परम्परा आयुर्वेद की सांस्कृतिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि को व्यक्त करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से आयुर्वेद का क्रमिक विकास वैदिक ज्ञान, लोकानुभव तथा चिकित्सकीय अभ्यास के दीर्घकालीन समन्वय का परिणाम माना जाता है।

आयुर्वेद का सुव्यवस्थित विकास मुख्यत: तीन महान आचार्यों के माध्यम से हुआ–

(क) आचार्य चरक – कायचिकित्सा, निदान, औषध–विज्ञान, रोग–विज्ञान तथा निवारक चिकित्सा के महान प्रवर्तक।

(ख) आचार्य सुश्रुत – शल्य चिकित्सा, शरीर रचना विज्ञान, शल्य उपकरणों तथा शल्य–प्रशिक्षण के अग्रणी आचार्य।

(ग) आचार्य वाग्भट्ट – पूर्ववर्ती आयुर्वेदिक परम्पराओं का समन्वय कर अष्टाङ्ग आयुर्वेद को व्यवस्थित रूप देने वाले विद्वान।

आयुर्वेद ने चिकित्सा को आठ प्रमुख शाखाओं (अष्टाङ्ग आयुर्वेद) में विभाजित किया–

1. कायचिकित्सा (आंतरिक रोग)
2. शल्य तंत्र (शल्य चिकित्सा)
3. शालाक्य तंत्र (नेत्र, नाक, कान एवं गला)
4. कौमारभृत्य (बाल एवं मातृ चिकित्सा)
5. अगद तंत्र (विष चिकित्सा)
6. भूतविद्या (मानसिक एवं व्यवहारिक विकारों से संबंधित पारंपरिक शाखा)
7. रसायन तंत्र (पुनर्यौवन एवं प्रतिरक्षा संवर्धन)
8. वाजीकरण (प्रजनन एवं प्रजनन स्वास्थ्य)

यह वर्गीकरण स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली अत्यंत विकसित, विशिष्ट एवं विशेषज्ञता–आधारित थी। विभिन्न रोगों के लिए पृथक शाखाओं का विकास उस समय की चिकित्सा–चेतना और व्यावहारिक अनुभव का प्रमाण है।

आयुर्वेद की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह रोग के उपचार से अधिक उसके कारणों की पहचान तथा रोकथाम पर बल देता है। दिनचर्या, ऋतुचर्या, संतुलित आहार, नियमित व्यायाम, योग, मानसिक संयम तथा नैतिक जीवन को स्वास्थ्य का आधार माना गया है। आधुनिक युग में जब जीवनशैली–जनित रोग तीव्र गति से बढ़ रहे हैं, तब आयुर्वेद की यह निवारक दृष्टि और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है।

आचार्य चरक का चिकित्सा विज्ञान में योगदान– भारतीय चिकित्सा परम्परा में आचार्य चरक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी रचनाचरक संहिताआयुर्वेद की सबसे प्रामाणिक संहिताओं में गिनी जाती है। विद्वानों के अनुसार इसका मूल आधार अग्निवेश तंत्र था, जिसे आचार्य चरक ने संशोधित एवं विस्तृत रूप प्रदान किया। बाद में दृढबल ने इसके कुछ लुप्त अध्यायों का पुनर्संपादन किया। चरक संहिता मुख्यत:कायचिकित्सा पर केंद्रित है, किंतु इसमें शरीर–विज्ञान, औषध–विज्ञान, रोग–विज्ञान, निदान, आहार–विहार तथा चिकित्सकीय नैतिकता का भी विस्तृत विवेचन मिलता है।

आचार्य चरक का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने रोग के उपचार की अपेक्षारोग की रोकथाम पर अधिक बल दिया। उनका मानना था कि संतुलित आहार, नियमित दिनचर्या, ऋतु के अनुरूप जीवनशैली, मानसिक संयम तथा सदाचार स्वस्थ जीवन के आधार हैं। यह दृष्टिकोण आज के Preventive Mediciene और Lifestyle Mediciene की अवधारणाओं के निकट दिखाई देता है।

चरक ने चिकित्सक के लिए चार आवश्यक तत्व बताए – भिषक

(चिकित्सक), द्रव्य (औषधि), उपस्थाता (परिचारक) तथा रोगी। उनके अनुसार इन चारों का समुचित समन्वय ही सफल चिकित्सा का आधार है। आधुनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में भी चिकित्सक, नर्सिंग स्टाफ, औषधि तथा रोगी की सहभागिता को उपचार की सफलता का महत्वपूर्ण आधार माना जाता है।

चरक संहिता में चिकित्सक के नैतिक आचरण पर विशेष बल दिया गया है। चिकित्सक को ज्ञानवान, संयमी, करुणामय तथा गोपनीयता का पालन करने वाला बताया गया है। रोगी के हित को सर्वोपरि मानने की यह अवधारणा आधुनिक चिकित्सा नैतिकता के अनेक सिद्धांतों से साम्य रखती है।

इसके अतिरिक्त चरक ने सैकड़ों औषधीय वनस्पतियों का वर्गीकरण, उनके गुण, उपयोग तथा निर्माण विधियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने व्यक्तिगत प्रकृति (प्रकृति) के अनुसार उपचार की अवधारणा विकसित की, जो आज Psrsonalise Mediciene के संदर्भ में पुन: चर्चा का विषय है। हालांकि आधुनिक व्यक्तिगत चिकित्सा मुख्यत: आनुवंशिकी पर आधारित है, इसलिए दोनों अवधारणाओं को समान न मानकर तुलनात्मक दृष्टि से समझना अधिक उपयुक्त है।

आचार्य सुश्रुत और शल्य चिकित्सा का विकास– यदि चरक को आंतरिक चिकित्सा का जनक कहा जाता है, तोआचार्य सुश्रुतको शल्य चिकित्सा का अग्रदूत माना जाता है। उनकी रचनासुश्रुत संहिताविश्व चिकित्सा इतिहास की महत्वपूर्ण शल्य चिकित्सा संबंधी कृतियों में सम्मिलित है।

सुश्रुत संहिता में लगभग300 प्रकार की शल्य प्रक्रियाओं तथा120 से अधिक शल्य उपकरणोंका वर्णन मिलता है। इन उपकरणों में चाकू, सुई, कैंची, चिमटी, हुक, नलिकाएँ तथा अन्य शल्य यंत्र सम्मिलित हैं। आधुनिक उपकरणों से उनकी संरचना भिन्न थी, किंतु यह विवरण उस समय की विकसित शल्य परम्परा का संकेत देता है।

सुश्रुत ने शल्य–प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया। वे विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष रोगी पर अभ्यास कराने से पूर्व फल, सब्जियों, चमड़े तथा अन्य उपयुक्त पदार्थों पर अभ्यास कराने की सलाह देते हैं। यह पद्धति आधुनिक चिकित्सा शिक्षा में प्रयुक्त Simulation Based Training की अवधारणा से कुछ सीमा तक तुलनीय मानी जा सकती है।

सुश्रुत संहिता में अस्थिभंग, संधि–भंग, नेत्र रोग, मूत्राशय की पथरी, प्रसूति संबंधी समस्याएँ तथा विभिन्न शल्य प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। विशेष रूप से नाक के पुनर्निर्माण की तकनीक ने यूरोप सहित विश्व के अनेक चिकित्सकों का ध्यान आकर्षित किया। अठारहवीं शताब्दी में भारतीय शल्य तकनीकों का विवरण यूरोपीय चिकित्सा साहित्य में भी प्रकाशित हुआ, जिसने आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी के इतिहास में भारत की भूमिका को रेखांकित किया।

सुश्रुत ने शरीर रचना विज्ञान के अध्ययन के लिए शव विच्छेदन का भी उल्लेख किया है। यह तथ्य दर्शाता है कि शरीर की संरचना को समझने के लिए प्रत्यक्ष अवलोकन को महत्व दिया जाता था। यद्यपि उस समय की पद्धतियाँ आधुनिक एनाटॉमी से भिन्न थीं, फिर भी यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण संकेत है।

आचार्य वाग्भट्ट एवं अष्टाङ्ग आयुर्वेद का समन्वय– आचार्य वाग्भट्ट ने पूर्ववर्ती आयुर्वेदिक परम्पराओं का समन्वय करते हुएअष्टाङ्ग संग्रहतथाअष्टाङ्ग हृदयम्की रचना की। इन ग्रंथों ने आयुर्वेद को अधिक व्यवस्थित, सरल तथा चिकित्सकीय व्यवहार के अनुकूल स्वरूप प्रदान किया।

वाग्भट्ट ने स्वास्थ्य संरक्षण मेंदिनचर्या, ऋतुचर्या, सद्वृत्ता, आहार–विहार, योग, व्यायाम, निद्रातथा मानसिक संतुलन को अत्यधिक महत्व दिया। उनके अनुसार अधिकांश रोग अनुचित जीवनशैली, असंतुलित भोजन तथा मानसिक तनाव के कारण उत्पन्न होते हैं। आज जब मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा और हृदय रोग जैसी जीवनशैली–जनित समस्याएँ बढ़ रही हैं, तब वाग्भट्ट की शिक्षाएँ विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होती हैं।

अष्टाङ्ग हृदयम् की भाषा अपेक्षाकृत सरल होने के कारण यह भारत के विभिन्न भागों में चिकित्सकों के लिए अत्यंत उपयोगी ग्रंथ बना और आज भी आयुर्वेदिक शिक्षा का महत्वपूर्ण आधार है।

त्रिदोष सिद्धांत : आयुर्वेद की मूल अवधारणा– आयुर्वेद का आधारत्रिदोष सिद्धांतहै, जिसके अनुसार शरीर की समस्त जैविक क्रियाएँवात, पित्ता एवं कफनामक तीन कार्यात्मक सिद्धांतों के संतुलन पर आधारित हैं।

- वात – गति, स्नायु क्रिया, श्वसन, संचार तथा तंत्रिका संबंधी कार्यों से संबद्ध माना गया है।
- पित्त – पाचन, चयापचय, ऊष्मा तथा जैव–रासायनिक परिवर्तनों से संबंधित माना गया है।
- कफ – शरीर की संरचना, स्थिरता, स्निग्धता, पोषण तथा संरक्षण से संबद्ध माना गया है।

आयुर्वेद के अनुसार जब इन तीनों दोषों का संतुलन बना रहता है तब व्यक्ति स्वस्थ रहता है, जबकि असंतुलन रोग का कारण बनता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में त्रिदोष सिद्धांत को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि इसकी अवधारणाएँ आधुनिक जैव–रसायन और शरीर–क्रिया विज्ञान की शब्दावली से भिन्न हैं। तथापि कुछ शोधकर्ता इसे शरीर के कार्यात्मक संतुलन की पारंपरिक व्याख्या के रूप में देखते हैं। इस कारण त्रिदोष सिद्धांत का अध्ययन तुलनात्मक एवं अंतर्विषयी दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए।

औषधीय वनस्पतियाँ एवं द्रव्यगुण विज्ञान– भारतीय ज्ञान परम्परा में वनस्पतियों को प्रकृति का अमूल्य उपहार माना गया है। आयुर्वेद में औषधीय द्रव्यों का व्यवस्थित वर्गीकरणद्रव्यगुण विज्ञानके अंतर्गत किया गया है। प्रत्येक औषधि के रस (स्वाद), गुण, वीर्य (उष्मीय प्रभाव), विपाक तथा विशेष प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट ने अनेक औषधीय पौधों का उल्लेख किया है, जिनमें प्रमुख हैं:

1. अश्वगंधा (*Withaniasomnifera*)
2. गुडूचीधगिलोय (*Tinospora cordifolia*)
3. हरिद्रा (हल्दी) (*Curcuma longa*)
4. आंवला (*Phyllanthus emblica*)
5. तुलसी (*Ocimum tenuiflorum*)
6. नीम (*Azadirachta indica*)
7. ब्राह्मी (*Bacopa monnieri*)
8. शतावरी (*Asparagus racemosus*)

आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों में इन पौधों के विभिन्न जैव–सक्रिय घटकों पर व्यापक अध्ययन किए जा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप, हल्दी में पाया जाने वालाकर्क्यूमिन, अश्वगंधा केविथेनोलाइड्स तथा गिलोय के विभिन्न

सक्रिय घटकों पर सूजन, प्रतिरक्षा एवं अन्य जैविक प्रभावों के संदर्भ में अनेक अध्ययन प्रकाशित हुए हैं। हालांकि प्रत्येक पारंपरिक दावे की पुष्टि समान स्तर के वैज्ञानिक प्रमाणों से नहीं हुई हैय इसलिए साक्ष्य-आधारित मूल्यांकन आवश्यक है।

भारतीय चिकित्सा परम्परा का यह ज्ञान आज औषधि अनुसंधान, हर्बल चिकित्सा तथा औषधीय पौधों के संरक्षण के क्षेत्र में नई संभावनाएँ प्रस्तुत कर रहा है।

चिकित्सा शिक्षा एवं चिकित्सकीय नैतिकता- भारतीय ज्ञान परम्परा में चिकित्सा शिक्षा केवल तकनीकी प्रशिक्षण नहीं थी, बल्कि चरित्र निर्माण, अनुशासन एवं सामाजिक उत्तारदायित्व का भी माध्यम थी। गुरुकुल परम्परा में विद्यार्थियों को औषधीय पौधों की पहचान, रोगी की परीक्षा, औषधि निर्माण, शल्य कौशल तथा नैतिक आचरण का समन्वित प्रशिक्षण दिया जाता था।

चरक संहिता में चिकित्सक के लिए सत्यनिष्ठा, विनम्रता, गोपनीयता, करुणा तथा निरंतर अध्ययन को अनिवार्य बताया गया है। रोगी की सामाजिक स्थिति, आर्थिक अवस्था या व्यक्तिगत पहचान के आधार पर भेदभाव न करने की भावना भी भारतीय चिकित्सा परम्परा के मानवीय पक्ष को उजागर करती है।

आज जब चिकित्सा शिक्षा में Professional Ethics, Patient Rights, Informed Consent तथाCompassionate Care पर बल दिया जा रहा है, तब भारतीय ज्ञान परम्परा के ये नैतिक आदर्श पुन: प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय चिकित्सा प्रणाली ने केवल उपचार पद्धति ही नहीं, बल्कि चिकित्सकीय आचरण की एक उच्च नैतिक परम्परा भी विकसित की।

योग, प्राणायाम एवं मानसिक स्वास्थ्य रू भारतीय ज्ञान परम्परा का समग्र दृष्टिकोण- भारतीय ज्ञान परम्परा में स्वास्थ्य का तात्पर्य केवल शारीरिक रोगों की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि शरीर, मन, इन्द्रियों तथा आत्मा के संतुलित विकास से है। इसी कारण योग और आयुर्वेद को परस्पर पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ माना गया है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादितअष्टाङ्ग योगकृयम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधिकृमानव व्यक्तित्व के समग्र विकास का वैज्ञानिक अनुशासन प्रस्तुत करता है।

आयुर्वेद में मानसिक स्वास्थ्य को शारीरिक स्वास्थ्य के समान ही महत्त्व दिया गया है। चरक संहिता में क्रोध, शोक, भय, लोभ, ईर्ष्या तथा असंयमित जीवनशैली को रोगोत्पत्ति के प्रमुख कारणों में माना गया है। वहींसत्तवावजय चिकित्साके माध्यम से मानसिक संतुलन, आत्मसंयम, सदाचार, सकारात्मक चिंतन तथा ध्यान को मानसिक स्वास्थ्य की आधारशिला बताया गया है।

प्राणायाम के माध्यम से श्वसन तंत्र को संतुलित करने तथा ध्यान के माध्यम से मन की चंचलता को नियंत्रित करने की भारतीय अवधारणा आज वैश्विक स्तर पर भी व्यापक चर्चा का विषय है। अनेक आधुनिक शोधों में योग एवं ध्यान को तनाव प्रबंधन, चिंता के कुछ रूपों, नींद की गुणवत्ता तथा जीवन-गुणवत्ता में सुधार हेतु सहायक पाया गया है। यद्यपि गंभीर रोगों के उपचार में इनका उपयोग प्रशिक्षित चिकित्सकीय परामर्श के साथ पूरक चिकित्सा के रूप में किया जाना अधिक उपयुक्त माना जाता है।

अत: स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में योग केवल व्यायाम नहीं, बल्कि निवारक चिकित्सा, मानसिक स्वास्थ्य संरक्षण तथा स्वस्थ जीवन-पद्धति का अभिन्न अंग है।

भारतीय चिकित्सा प्रणाली का वैश्विक प्रभाव- भारतीय चिकित्सा परम्परा का प्रभाव प्राचीन काल से ही भारत की सीमाओं से बाहर तक विस्तृत रहा है। बौद्ध भिक्षुओं, समुद्री व्यापार तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से आयुर्वेद का ज्ञान श्रीलंका, नेपाल, तिब्बत, चीन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों तक पहुँचा। मध्यकाल में इसके अनेक ग्रंथों का अरबी एवं फारसी भाषाओं में अनुवाद हुआ, जिससे पश्चिम एशिया की चिकित्सा परम्पराएँ भी प्रभावित हुईं।

आचार्य सुश्रुत द्वारा वर्णित शल्य चिकित्सा, विशेष रूप से नासिका पुनर्निर्माण, ने अठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय चिकित्सकों का विशेष ध्यान आकर्षित किया। इसके पश्चात भारतीय शल्य चिकित्सा का उल्लेख आधुनिक चिकित्सा इतिहास के महत्वपूर्ण अध्यायों में किया जाने लगा।

इक्कीसवीं शताब्दी में योग, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा तथा औषधीय पौधों के प्रति वैश्विक रुचि में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। भारत सरकार द्वारा आयुष मंत्रालय की स्थापना, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा पारंपरिक चिकित्सा के लिए पृथक रणनीति तैयार किया जाना इस दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

भारतीय चिकित्सा प्रणाली का वैश्विक महत्व केवल उसकी प्राचीनता में नहीं, बल्कि उसके समग्र स्वास्थ्य दृष्टिकोण, निवारक चिकित्सा, प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा जीवनशैली आधारित स्वास्थ्य संरक्षण की अवधारणाओं में निहित है।

आधुनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता- वर्तमान समय में मानव समाज जीवनशैली-जनित रोगों, मानसिक तनाव, पर्यावरण प्रदूषण, प्रतिरक्षा संबंधी चुनौतियों तथा वृद्धावस्था संबंधी समस्याओं का सामना कर रहा है। इन परिस्थितियों में भारतीय चिकित्सा प्रणाली के अनेक सिद्धांत विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

आयुर्वेद संतुलित आहार, नियमित दिनचर्या, ऋतुचर्या, निद्रा, व्यायाम तथा मानसिक संतुलन को स्वास्थ्य संरक्षण का आधार मानता है। आधुनिक सार्वजनिक स्वास्थ्य भी स्वास्थ्य संवर्धन, रोग-निवारण तथा स्वस्थ जीवनशैली को प्राथमिकता देता है। इस दृष्टि से दोनों प्रणालियों के बीच संवाद एवं सहयोग की पर्याप्त संभावनाएँ हैं।

भारत में आयुष प्रणाली को स्वास्थ्य सेवाओं का पूरक अंग बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। औषधीय पौधों का वैज्ञानिक अध्ययन, आयुर्वेदिक औषधियों का मानकीकरण, समन्वित चिकित्सा, डिजिटल स्वास्थ्य अभिलेख तथा साक्ष्य-आधारित अनुसंधान इस दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी भारतीय ज्ञान प्रणाली को उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान का अभिन्न अंग बनाने पर बल दिया है। इससे चिकित्सा शिक्षा, औषधीय अनुसंधान तथा पारंपरिक ज्ञान के वैज्ञानिक पुनर्पाठ को नई दिशा मिली है।

चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ- यद्यपि भारतीय चिकित्सा प्रणाली विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध चिकित्सा परम्पराओं में से एक है, तथापि इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं।

प्रथम, प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों का समालोचनात्मक संपादन, प्रमाणिक अनुवाद तथा वैज्ञानिक व्याख्या अभी भी व्यापक स्तर पर अपेक्षित है।

द्वितीय, औषधीय पौधों की गुणवत्ता, शुद्धता, मानकीकरण तथा

गुणवत्ता नियंत्रण को और अधिक सुदृढ़ करने की आवश्यकता है।

तृतीय, पारंपरिक औषधियों एवं उपचार पद्धतियों के संबंध में उच्च गुणवत्ता वाले नैदानिक परीक्षण तथा बहुकेंद्रीय अनुसंधान अपेक्षाकृत सीमित हैं। इनके विस्तार से साक्ष्य-आधारित चिकित्सा को बल मिलेगा।

चतुर्थ, औषधीय जैव विविधता का संरक्षण तथा पारंपरिक ज्ञान से संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा भी समय की आवश्यकता है।

इन चुनौतियों के साथ-साथ भारतीय चिकित्सा प्रणाली के समक्ष अनेक संभावनाएँ भी विद्यमान हैं। भारत विश्व की सर्वाधिक समृद्ध औषधीय जैव विविधता, प्राचीन चिकित्सा ग्रंथों तथा प्रशिक्षित आयुर्वेदाचार्यों का धनी देश है। यदि पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान, जैव-प्रौद्योगिकी, औषधि अनुसंधान तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी नई तकनीकों के साथ समन्वित किया जाए तो वैश्विक स्वास्थ्य क्षेत्र में भारत की भूमिका और अधिक सशक्त हो सकती है।

निष्कर्ष- भारतीय ज्ञान परम्परा ने चिकित्सा विज्ञान के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं बहुआयामी योगदान दिया है। वैदिक साहित्य में स्वास्थ्य संबंधी प्रारंभिक अवधारणाओं से लेकर चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट्ट द्वारा प्रतिपादित आयुर्वेदिक सिद्धांतों तक भारतीय चिकित्सा प्रणाली का विकास निरंतर वैज्ञानिक अनुभव, चिकित्सकीय अभ्यास तथा मानवीय संवेदनाओं के आधार पर हुआ।

आचार्य चरक ने रोग-निवारण, निदान, आहार-विहार तथा चिकित्सकीय नैतिकता को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। आचार्य सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा, शरीर रचना विज्ञान तथा शल्य-प्रशिक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया। आचार्य वाग्भट्ट ने आयुर्वेद के विविध अंगों का समन्वय करते हुए उसे व्यवहारिक एवं सर्वसुलभ स्वरूप प्रदान किया। योग, प्राणायाम, ध्यान, औषधीय वनस्पतियाँ तथा प्रकृति के साथ संतुलित जीवन भारतीय चिकित्सा दर्शन की ऐसी विशेषताएँ हैं जो आज भी मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं।

यह भी स्पष्ट है कि भारतीय चिकित्सा प्रणाली का उद्देश्य केवल रोग का उपचार करना नहीं, बल्कि स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा, रोगों की रोकथाम तथा संतुलित जीवनशैली का विकास करना है। यही कारण है कि आधुनिक समय में समग्र स्वास्थ्य, निवारक चिकित्सा तथा समन्वित चिकित्सा की अवधारणाओं के साथ भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्व पुन: बढ़ रहा है।

यद्यपि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने रोग-निदान, आपातकालीन उपचार तथा शल्य चिकित्सा में अभूतपूर्व प्रगति की है, तथापि दीर्घकालिक स्वास्थ्य संरक्षण, जीवनशैली प्रबंधन, मानसिक संतुलन तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में भारतीय चिकित्सा परम्परा के सिद्धांत अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आयुर्वेद एवं भारतीय चिकित्सा ज्ञान का मूल्यांकन आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान, साक्ष्य-आधारित परीक्षण तथा अंतरविषयी अध्ययन के माध्यम से किया जाए।

अंतत: कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा केवल भारत की सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि मानवता को स्वस्थ, संतुलित एवं सतत जीवन-पद्धति प्रदान करने वाली एक महत्वपूर्ण ज्ञान-संपदा है। यदि इसके सिद्धांतों का वैज्ञानिक पुनर्पाठ, मानकीकरण तथा वैश्विक स्तर पर प्रभावी प्रस्तुतीकरण किया जाए, तो यह भविष्य की स्वास्थ्य व्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

(क) मूल आयुर्वेदिक एवं वैदिक ग्रंथ

1. अथर्ववेद। गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. ऋग्वेद। गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. चरक।चरक संहिता। हिन्दी व्याख्यासहित। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
4. सुश्रुत।सुश्रुत संहिता। हिन्दी व्याख्यासहित। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
5. वाग्भट्ट।अष्टाङ्गहृदयम। हिन्दी अनुवाद। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
6. पतञ्जलि।योगसूत्र। गीता प्रेस, गोरखपुर।

(ख) हिन्दी ग्रंथ

7. शर्मा, प्रियव्रत।आयुर्वेद का इतिहास। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
8. शर्मा, प्रियव्रत।द्रव्यगुण विज्ञान (भाग-1 एवं 2)। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
9. त्रिपाठी, ब्रह्मानन्द।चरक संहिता (हिन्दी टीका)। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
10. त्रिपाठी, ब्रह्मानन्द।अष्टाङ्गहृदयम् (निर्मला हिन्दी टीका)। चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी।
11. शास्त्री, अम्बिकादत्त।सुश्रुत संहिता (आयुर्वेद तत्त्व सन्दीपिका)। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
12. उपाध्याय, यदुनन्दन।माधव निदान। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
13. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र।भारतीय संस्कृति। लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
14. पाण्डेय, राजबली।भारतीय संस्कृति। चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
15. उपाध्याय, बलदेव।संस्कृत साहित्य का इतिहास। शारदा निकेतन, वाराणसी।

(ग) सरकारी एवं संस्थागत प्रकाशन

16. भारत सरकार।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020।
17. आयुष मंत्रालय।वार्षिक प्रतिवेदन (नवीनतम संस्करण)।
18. केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (CCRAS)।शोध प्रकाशन।
19. भारतीय चिकित्सा पद्धति राष्ट्रीय आयोग (NCIMS)।आधिकारिक प्रकाशन।
20. विश्व स्वास्थ्य संगठन। *Traditional Medicine Strategy 2025–2034*

****